आचार्य-उत्पलदेव-विरचिता

शिवस्तोत्रावली

(मूलमात्रम्)

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू
द्वारा संशोधित संस्करण के आधार पर

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर, कश्मीर

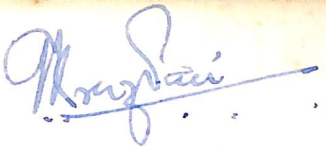

आचार्य उत्पलदेव विरचिता

शिवस्तोत्रावली

(मूलमात्र)

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू
द्वारा संशोधित संस्करण के आधार पर

प्रकाशक :

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट

श्रीनगर, कश्मीर

प्रकाशक :
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर, कश्मीर

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
प्रशासनिक कार्यालय,
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट,
२-महेन्द्रनगर, कनाल रोड,
जम्मू तवी

मई १९९७

मूल्य : रु. २०/-

© सर्वाधिकार सुरक्षित 'ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, श्रीनगर'

मुद्रक :
पैरामाऊण्ट प्रिंटोग्रॉफिक्स
१ अंसारी रोड, नई दिल्ली

प्राक्कथन

भला ही कोई साधक, भक्त या उपासक होगा जो आचार्य उत्पलदेव रचित 'शिवस्तोत्रावली' के नाम से अनभिज्ञ हो। यह स्तोत्र ग्रन्थ तो अद्वितीय है। इस स्तोत्र रस की बूंदें ज्योंही सच्चे भक्त के कानों में पड़ती है, उसकी आत्मिक उन्नति का सुखद क्षण आरम्भ होने लगता है। यद्यपि सैंकड़ों स्तोत्र-संकलन संस्कृत भाषा में उपलब्ध हैं, पर कोई इसकी समता करने का साहस नहीं कर सकता है। कारण यह कि यह स्तोत्रावली समावेशदशा से अभिभूत बने हुए कविहृदय की भावगंगा है। इसमें भक्ति है, नम्रता है, विवशता है, करुणा है, उन्माद है, आर्त पुकार है, दैन्य है, ग्लानि है, अभीष्ट से शिकवा है और आत्म समर्पण है। यह स्तोत्रग्रन्थ बीस भिन्न भिन्न स्तोत्रों पर आधारित हैं जिनमें संग्रह-स्तोत्र, जय स्तोत्र और भक्ति स्तोत्र विशेष महत्व के हैं क्योंकि इनका नामकरण स्वयं आचार्य ने किया है जबकि अवशिष्ट स्तोत्रों का नामकरण श्री विश्वकर्मा ने अपने बुद्धिकौशल से किया। इसकी पुष्टि श्रीक्षेमराज जी ने भी अपनी टीका में की है।

कश्मीरशैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों की भित्ति पर भक्ति के प्रज्वलित रंगों का मुलम्मा चढ़ाकर शिवदृष्टि जैसे सैद्धान्तिक शैव ग्रन्थ के रचनाकार

श्री सोमानन्द के शिष्य आचार्य उत्पल देव ने शिवस्तोत्रावली रचकर जिस कला कौशल का नमूना भक्ति क्षेत्र में रखा वह अद्वितीय है। हमारे सद्गुरु महाराज इस स्तोत्रग्रन्थ के प्रत्येक श्लोकरत्न को अपने हृदय पर चमकीली रत्नमाला की भांति संजोये हुए रखते थे और समय समय पर भावावेश में आकर अश्रुसुरसरि से इस पर लगी जागतिक धूल को मिटाकर इसे सदा प्रज्वलित रखने का प्रयास करते थे। इस ग्रन्थ के संग्रह स्तोत्र के साथ सद्गुरु महाराज का अनन्य लगाव था। शायद ही ऐसा समय कोई होगा जब कि इस स्तोत्र के फुहार से उनकी उर्वरहृदयधरा प्रस्फुटित न हुई हो और वे स्वात्मसाक्षात्कार में तल्लीन न हुए हों।

कश्मीरी ब्राह्मणों की 'राजानक' जाति (वर्तमान राजदान) से सम्बद्ध रखने वाले आचार्य उत्पलदेव के पिता श्री उदयाकर थे और माता का नाम श्रीमती वागीश्वरी था। कश्मीर के राजा ललितादित्य के राज्यकाल में आचार्य के पूर्वज गुजरात से कश्मीर पधारे थे, अतः इनका स्थितिकाल नवीं शताब्दी के आरम्भ में मानाजाता है। अन्य प्रसिद्ध शैवाचार्यों के समान श्री उत्पलदेव भी श्रीनगर में ही रहते थे और जनश्रुतियों के आधार पर इनका निवासस्थान गोतपुर, विचारनाग श्रीनगर के आसपास था।

आचार्य उत्पलदेव की प्रतिभा असाधारण थी। इन्होंने ईश्वर-

प्रत्यभिज्ञा, प्रत्यभिज्ञावृत्ति, प्रत्यभिज्ञाटीका, सिद्धित्रयी (ईश्वर सिद्धि, सम्बन्ध सिद्धि, अजड प्रमातृ सिद्धि), शिव दृष्टि वृत्ति और शिवस्तोत्रावली लिखकर कश्मीर-शैवदर्शन को पराकाष्ठा की भूमि पर पहुंचाया।

प्रस्तुत ग्रन्थ शिवस्तोत्रावली का गुटका रूप में मात्र मूल श्लोकों को प्रकाशित; (सद्गुरु महाराज की आज की जन्म जयन्ती पर) करने की आज्ञा देकर ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के हम परम आभारी हैं। यह ग्रन्थ 'चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन' वाराणसी से स्वामी जी महाराज की हिन्दी टीका सहित पहिली बार सन् १९६४ में प्रकाशित हुआ था। इसकी द्वितीय आवृत्ति भी अब समाप्त हो चुकी थी। अब शीघ्र ही संशोधित संस्करण ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के तत्त्वावधान में पहिली बार प्रकाशित होगा। भक्त जनता के आग्रह पर गुटका रूप में इसे प्रकाशित करने का एकमात्र ध्येय यही है कि इस भक्ति स्तोत्र ग्रन्थ को सारे साधक व भक्त लोग, अपनी जेब में रखकर जब कभी, जहां कहीं, जिस किसी स्थान पर समय मिले, इसे वांचे और स्वात्मानन्द को प्राप्त करें और इस तरह समय को व्यर्थ न गंवा दें, क्योंकि समय को व्यर्थ में गंवाना अपने अमूल्य जीवन के साथ घोर अन्याय करना है और ईश्वर की दी हुई वस्तु का अनादर करना है। इसमें कोई संदेह नही कि श्रद्धा के साथ इस गुटके का वाचन कल्पलता

के समान प्रत्येक फल को सम्पूर्ण करने में सशक्त है। जिज्ञासु साधकों के लिए इस गुटिके का मनन रामबाण के समान अमोघ है। सद्गुरु महाराज कहा करते थे कि यह भक्ति ग्रन्थ सर्वसिद्धि प्रदान करने का एकमात्र उपाय है अतः इसका उठते-बैठते, सोते जागते मनन करते रहो। यदि ट्रस्ट के इस प्रयास से साधकों को आत्मिक उन्नति में कुछ लाभ होगा तो ट्रस्ट कृतकृत्य होगा।

जय गुरुदेव

प्रो० मखन लाल कुकिलू

वैशाख कृष्ण द्वादशी
सद्गुरु जन्म जयन्ती
रविवार, ४ मई, १९९७

श्रीमदुत्पलदेवाचार्यविरचिता

श्रीशिवस्तोत्रावली

अथ भक्तिविलासाख्यं प्रथमं स्तोत्रम्

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम्।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम्॥१॥

आत्मा मम भवद्भक्तिसुधापानयुवाऽपि सन्।
लोकयात्रारजोरागात्पलितैरिव धूसरः॥२॥

लब्धत्वत्संपदां भक्तिमतां त्वत्पुरवासिनाम्।
सञ्चारो लोकमार्गेऽपि स्यात्तयैव विजृम्भया॥३॥

साक्षाद्भवन्मये नाथ सर्वस्मिन् भुवनान्तरे।
किं न भक्तिमतां क्षेत्रं मन्त्रः क्वैषां न सिद्ध्यति।।४।।

जयन्ति भक्तिपीयूषरसासववरोन्मदाः।
अद्वितीया अपि सदा त्वद्द्वितीया अपि प्रभो।।५।।

अनन्तानन्दसिन्धोस्ते नाथ तत्त्वं विदन्ति ते।
तादृशा एव ये सान्द्रभक्त्यानन्दरसाप्लुताः।।६।।

त्वमेवात्मेश सर्वस्य सर्वश्चात्मनि रागवान्।
इति स्वभावसिद्धां त्वद्भक्तिं जानञ्जयेज्जनः।।७।।

नाथ वेद्यक्षये केन न दृश्योऽस्येककः स्थितः।
वेद्यवेदकसंक्षोभेऽप्यसि भक्तैः सुदर्शनः।।८।।

अनन्तानन्दसरसी देवी प्रियतमा यथा।
अवियुक्तास्ति ते तद्वदेका त्वद्भक्तिरस्तु मे।।९।।

सर्व एव भवल्लाभहेतुर्भक्तिमतां विभो।
संविन्मार्गोऽयमाह्लाददुःखमोहैस्त्रिधा स्थितः।।१०।।

भवद्भक्त्यमृतास्वादाद्बोधस्य स्यात्परापि या।
दशा सा मां प्रति स्वामिन्नासवस्येव शुक्तता।।११।।

भवद्भक्तिमहाविद्याा येषामभ्यासमागता।
विद्याविद्योभयस्यापि त एते तत्त्ववेदिनः।।१२।।

आमूलाद्वाग्लता सेयं क्रमविस्फारशालिनी।
त्वद्भक्तिसुधया सिक्ता तद्रसाढ्यफलास्तु मे।।१३।।

शिवो भूत्वा यजेतेति भक्तो भूत्वेति कथ्यते।
त्वमेव हि वपुः सारं भक्तैरद्वयशोधितम्।।१४।।

भक्तानां भवदद्वैतसिद्धचै का नोपपत्तयः।
तदसिद्धचै निकृष्टानां कानि नावरणानि वा।।१५।।

कदाचित्कापि लभ्योऽसि योगेनेतीश वञ्चना।
अन्यथा सर्वकक्ष्यासु भासि भक्तिमतां कथम्।।१६।।

प्रत्याहारद्यसंस्पृष्टो विशेषोऽस्ति महानयम्।
योगिभ्यो भक्तिभाजां यतव्युत्थानेऽपि समाहिताः।।१७।।

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।।१८।।

सर्वतो विलसद्भक्तितेजोध्वस्तावृतेर्मम।
प्रत्यक्षसर्वभावस्य चिन्तानामापि नश्यतु।।१९।।

शिव इत्येकाशब्दस्य जिह्वाग्रे तिष्ठतः सदा।
समस्तविषयास्वादो भक्तेष्वेवास्ति कोऽप्यहो।।२०।।

शान्तकल्लोलशीताच्छस्वादुभक्तिसुधाम्बुधौ।
अलौकिकरसास्वादे, सुस्थैः को नाम गण्यते।।२१।।

मादृशैः किं न चर्व्येत भवद्भक्तिमहौषधिः।
तादृशी भगवन्यस्या मोक्षाख्योऽनन्तरो रसः॥२२॥

ता एव परमर्थ्यन्ते सम्पदः सद्भिरीश याः।
त्वद्भक्तिरससम्भोगविस्रम्भपरिपोषिकाः॥२३॥

भवद्भक्तिसुधासारस्तैः किमप्युपलक्षितः।
ये न रागादिपङ्केऽस्मिँल्लिप्यन्ते पतिता अपि॥२४॥

अणिमादिषु मोक्षान्तेष्वङ्गेष्वेव फलाभिधा।
भवद्भक्तेर्विपक्वाया लताया इव केषुचित्॥२५॥

चित्रं निसर्गतो नाथ! दुःखबीजमिदं मनः।
त्वद्भक्तिरससंसिक्तं निःश्रेयसमहाफलम्॥२६॥

अथ सर्वात्मपरिभावनाख्यं द्वितीयं स्तोत्रम्

अग्नीषोमरविब्रह्मविष्णुस्थावरजङ्गम-
स्वरूप बहुरूपाय नमः संविन्मयाय ते।।१।।

विश्वेन्धनमहाक्षारानुलेपशुचिवर्चसे।
महानलाय भवते विश्वैकहविषे नमः।।२।।

परमामृतसान्द्राय शीतलाय शिवाग्नये।
कस्मैचिद्विश्वसंप्लोषविषमाय नमोऽस्तु ते।।३।।

महादेवाय रुद्राय शङ्कराय शिवाय ते।
महेश्वरायापि नमः कस्मैचिन्मन्त्रमूर्तये।।४।।

नमो निकृत्तनिःशेषत्रैलोक्यविगलद्वसा-
वसेकविषमायापि मङ्गलाय शिवाग्नये।।५।।

समस्तलक्षणायोग एव यस्योपलक्षणम्।
तस्मै नमोऽस्तु देवाय कस्मैचिदपि शम्भवे।।६।।

वेदागमविरुद्धाय वेदागमविधायिने।
वेदागमसतत्त्वाय गुह्याय स्वामिने नमः।।७।।

संसारैकनिमित्ताय संसारैकविरोधिने।
नमः संसाररूपाय निःसंसाराय शम्भवे।।८।।

मूलाय मध्यायाग्राय मूलमध्याग्रमूर्तये।
क्षीणाग्रमध्यमूलाय नमः पूर्णाय शम्भवे।।९।।

नमः सुकृतसंभारविपाकः सकृदप्यसौ।
यस्य नामग्रहः तस्मै दुर्लभाय शिवाय ते।।१०।।

नमश्चराचराकारपरेतनिचयैः सदा।
क्रीडते तुभ्यमेकस्मै चिन्मयाय कपालिने।।११।।

मायाविने विशुद्धाय गुह्याय प्रकटात्मने।
सूक्ष्माय विश्वरूपाय नमश्चित्राय शम्भवे।।१२।।

ब्रह्मेन्द्रविष्णुनिर्व्यूढजगत्संहारकेलये।
आश्चर्यकरणीयाय नमस्ते सर्वशक्तये।।१३।।

तटेष्वेव परिभ्रान्तैः लब्धास्तास्ता विभूतयः।
यस्य तस्मै नमस्तुभ्यमगाधहरसिन्धवे।।१४।।

मायामयजगत्सान्द्रपङ्कमध्याधिवासिने।
अलेपाय नमः शम्भुशतपत्राय शोभिने।।१५।।

मङ्गलाय पवित्राय निधये भूषणात्मने।
प्रियाय परमार्थाय सर्वोत्कृष्टाय ते नमः।।१६।।

नमः सततबद्धाय नित्यनिर्मुक्तिभागिने।
बन्धमोक्षविहीनाय कस्मैचिदपि शम्भवे।।१७।।

उपहासैकसारेऽस्मिन्नेतावति जगत्त्रये।
तुभ्यमेवाद्वितीयाय नमो नित्यसुखात्मिने॥१८॥

दक्षिणाचारसाराय वामाचाराभिलाषिणे।
सर्वाचाराय शर्वाय निराचाराय ते नमः॥१९॥

यथा तथापि यः पूज्यो यत्रतत्रापि योऽर्चितः।
योऽपि वा सोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्मै नमोऽस्तु ते॥२०॥

मुमुक्षुजनसेव्याय सर्वसन्तापहारिणे।
नमो विततलावण्यवाराय वरदाय ते॥२१॥

सदा निरन्तरानन्दरसनिर्भरिताखिल-
त्रिलोकाय नमस्तुभ्यं स्वामिने नित्यपर्वणे॥२२॥

सुखप्रधानसंवेद्यसम्भोगैर्भजते च यत्।
त्वामेव तस्मै घोराय शक्तिवृन्दाय ते नमः॥२३॥

मुनीनामप्यविज्ञेयं भक्तिसम्बन्धचेष्टिताः।
आलिङ्गन्त्यपि यं तस्मै कस्मैचिद्भवते नमः।।२४।।

परमामृतकोशाय परमामृतराशये।
सर्वपारम्यपारम्यप्राप्याय भवते नमः।।२५।।

महामन्त्रमयं नौमि रूपं ते स्वच्छशीतलम्।
अपूर्वामोदसुभगं परामृतरसोल्वणम्।।२६।।

स्वातन्त्र्यामृतपूर्णत्वदैक्यख्यातिमहापटे।
चित्रं नास्त्येव यत्रेश तन्नौमि तव शासनम्।।२७।।

सर्वाशङ्काशनिं सर्वालक्ष्मीकालानलं तथा।
सर्वामङ्गल्यकल्यान्तं मार्गं माहेश्वरं नुमः।।२८।।

जय देव नमो नमोऽस्तु ते, सकलं विश्वमिदं तवाश्रितम्।
जगतां परमेश्वरो भवान्, परमेकः शरणागतोऽस्मि ते।।२९।।

अथ प्रणयप्रसादाख्यं तृतीयं स्तोत्रम्

सदसत्त्वेन भावानां युक्ता या द्वितयी गतिः।
तामुल्लङ्घ्य तृतीयस्मै नमश्चित्राय शम्भवे॥१॥

आसुरर्षिजनादस्मिन्नस्वतन्त्रे जगत्त्रये।
स्वतन्त्रास्ते स्वतन्त्रस्य ये तवैवानुजीविनः॥२॥

अशेष-विश्वखचित-भवद्वपुरनुस्मृतिः।
येषां भवरुजामेकं भेषजं ते सुखासिनः॥३॥

सितातपत्रं यस्येन्दुः स्वप्रभापरिपूरितः।
चामरं स्वर्धुनीस्रोतः स एकः परमेश्वरः॥४॥

प्रकाशां शीतलमेकां शुद्धां शशिकलामिव।
दृशं वितर मे नाथ कामप्यमृतवाहिनीम्॥५॥

त्वच्चिदानन्दजलधेश्च्युताः संवित्तिविप्रुषः।
इमाः कथं मे भगवन्नामृतास्वादसुन्दराः।।६।।

त्वयि रागरसे नाथ न मग्नं हृदयं प्रभो।
येषामहृदया एव तेऽवज्ञास्पदमीदृशाः।।७।।

प्रभुणा भवता यस्य जातं हृदयमेलनम्।
प्राभवीणां विभूतीनां परमेकः स भाजनम्।।८।।

हर्षाणामथ शोकानां सर्वेषां प्लावकः समम्।
भवद्ध्यानामृतापूरो निम्नानिम्नभुवामिव।।९।।

केव न स्याद्दशा तेषां सुखसम्भारनिर्भरा।
येषामात्माधिकेनेश न क्वापि विरहस्त्वया।।१०।।

गर्जामि बत नृत्यामि पूर्णा मम मनोरथाः।
स्वामी ममैष घटितो यत्त्वमत्यन्तरोचनः।।११।।

नान्यद्वेद्यं क्रिया यत्र नान्यो योगो विदा च यत्।
ज्ञानं स्यात् किन्तु विश्वैकपूर्णा चित्त्वं विजृम्भते॥१२॥

दुर्जयानामनन्तानां दुःखानां सहसैव ते।
हस्तात्पलायिता येषां वाचि शश्वच्छिवध्वनिः॥१३॥

उत्तमः पुरुषोऽन्योऽस्ति युष्मच्छेषविशेषितः।
त्वं महापुरुषस्त्वेको निःशेषपुरुषाश्रयः॥१४॥

जयन्ति ते जगद्वन्द्या दासास्ते जगतां विभो।
संसारार्णव एवैष येषां क्रीडामहासरः॥१५॥

आसतां तावदन्यानि दैन्यानीह भवज्जुषाम्।
त्वमेव प्रकटीभूया इत्यनेनैव लज्ज्यते॥१६॥

मत्परं नास्ति तत्रापि जापकोऽस्मि तदैक्यतः।
तत्त्वेन जप इत्यक्षमालया दिशसि क्वचित्॥१७॥

सतोऽवश्यं परमसत्सच्च तस्मात्परं प्रभो।
त्वं चासतस्सतश्चान्यस्तेनासि सदसन्मयः॥१८॥

सहस्रसूर्यकिरणाधिकशुद्धप्रकाशवान्।
अपि त्वं सर्वभुवनव्यापकोऽपि न दृश्यसे॥१९॥

जडे जगति चिद्रूपः किल वेद्योऽपि वेदकः।
विभुर्मिते च येनासि तेन सर्वोत्तमो भवान्॥२०॥

अलमाक्रन्दितैरन्यैरियदेव पुरः प्रभोः।
तीव्रं विरौमि यन्नाथ मुह्याम्येवं विदन्नपि॥२१॥

अथ सुरसोद्बलाख्यं चतुर्थं स्तोत्रम्

चपलमसि यदपि मानस
तत्रापि श्लाघ्यसे यतो भजसे।
शरणानामपि शरणं
त्रिभुवनगुरुमम्बिकाकान्तम्।।१।।

उल्लङ्घ्य विविधदैवत-
सोपानक्रममुपेयशिवचरणान्।
आश्रित्याप्यधरतरां भूमिं
नाद्यापि चित्रमुज्झामि।।२।।

प्रकटय निजमध्वानं
स्थगयतरामखिललोकचरितानि।
यावद्भवामि भगवं-
स्तव सपदि सदोदितो दासः।।३।।

शिव शिव शम्भो शङ्कर
शरणागतवत्सलाशु कुरु करुणाम्।
तव चरणकमलयुगल-
स्मरणपरस्य हि सम्पदोऽदूरे।।४।।

तावकाङ्घ्रिकमलासनलीना
ये यथारुचि जगद्रचयन्ति।
ते विरिञ्चिमधिकारमलेना-
लिप्तमस्ववशमीश हसन्ति।।५।।

त्वत्प्रकाशवपुषो न विभिन्नं
किंचन प्रभवति प्रतिभातुम्।
तत्सदैव भगवन् परिलब्धो-
ऽसीश्वर प्रकृतितोऽपि विदूरः।।६।।

पादपङ्कजरसं तव केचिद्
भेदपर्युषितवृत्तिमुपेताः।

केचनापि रसयन्ति तु सद्यो
भातमक्षतवपुर्द्वयशून्यम्।।७।।

नाथ विद्युदिव भाति विभाते
या कदाचन ममामृतदिग्धा।
सा यदि स्थिरतरैव भवेत्तत्
पूजितोऽसि विधिवत्किमुतान्यत्।।८।।

सर्वमस्यपरमस्ति न किंचिद्
वस्त्ववस्तु यदि वेति महत्या।
प्रज्ञया व्यवसितोऽत्र यथैव
त्वं तथैव भव सुप्रकटो मे।।९।।

स्वेच्छयैव भगवन्निजमार्गे
कारितः पदमहं प्रभुणैव।
तत्कथं जनवदेव चरामि
त्वत्पदोचितमवैमि न किंचित्।।१०।।

कोऽपि देव हृदि तेषु तावको
जृम्भते सुभगभाव उत्तमः।
त्वत्कथाम्बुदनिनादचातका
येन तेऽपि सुभगीकृताश्चिरम्॥११॥

त्वज्जुषां त्वयि कयापि लीलया
राग एष परिपोषमागतः।
यद्वियोगभुवि सङ्कथा तथा
संस्मृतिः फलति संगमोत्सवम्॥१२॥

यो विचित्ररससेकवर्धितः
शङ्करेति शतशोऽप्युदीरितः।
शब्द आविशति तिर्यगाशये-
ष्वप्ययं नवनवप्रयोजनः॥१३॥

ते जयन्ति मुखमण्डले भ्रमन्
अस्ति येषु नियतं शिवध्वनिः।

यः शशीव प्रसृतोऽमृताशयात्
स्वादु संस्रवति चामृतं परम्॥१४॥

परिसमाप्तमिवोग्रमिदं जगद्
विगलितोऽविरलो मनसो मलः।
तदपि नास्ति भवत्पुरगोपुरा-
र्गलकवाटविघट्टनमण्वपि॥१५॥

सततफुल्लभवन्मुखपङ्कजो-
दरविलोकनलालसचेतसः।
किमपि तत्कुरु नाथ मनागिव
स्फुरसि येन ममाभिमुखस्थितिः॥१६॥

त्वदऽविभेदमतेरपरं नु किं
सुखमिहास्ति विभूतिरथापरा।
तदिह तावकदासजनस्य किं
कुपथमेति मनः परिहृत्य ताम्॥१७॥

क्षणमपीह न तावकदासतां
प्रति भवेयमहं किल भाजनम्।
भवदभेदरसासवमादरा-
दविरतं रसयेयमहं न चेत्॥१८॥

न किल पश्यति सत्यमयं जन-
स्तव वपुर्द्वयदृष्टिमलीमसः।
तदपि सर्वविदाश्रितवत्सलः
किमिदमारटितं न शृणोषि मे॥१९॥

स्मरसि नाथ कदाचिदपीहितं
विषयसौख्यमथापि मयार्थितम्।
सततमेव भवद्वपुरीक्षणा-
मृतमभीष्टमलं मम देहि तत्॥२०॥

किल यदैव शिवाध्वनि तावके
कृतपदोऽस्मि महेश तवेच्छया।

शुभशतान्युदितानि तदैव मे
किमपरं मृगये भवतः प्रभो॥२१॥

यत्र सोऽस्तमयमेति विवस्वाँ-
श्चन्द्रमः-प्रभृतिभिः सह सर्वैः।
कापि सा विजयते शिवरात्रिः
स्वप्रभाप्रसरभास्वररूपा॥२२॥

अप्युपार्जितमहं त्रिषु लोके-
ष्वाधिपत्यममरेश्वर मन्ये।
नीरसं तदखिलं भवदङ्घ्रि-
स्पर्शनामृतरसेन विहीनम्॥२३॥

बत नाथ दृढोऽयमात्मबन्धो
भवदख्यातिमयस्त्वयैव क्लृप्तः।
यदयं प्रथमानमेव मे त्वा-
मवधीर्य श्लथते न लेशतोऽपि॥२४॥

महताममरेश पूज्यमानो-
ऽप्यनिशं तिष्ठसि पूजकैकरूपः।
बहिरन्तरपीह दृश्यमानः
स्फुरसि द्रष्टृशरीर एव शश्वत्॥२५॥

अथ स्वबलनिदेशनाख्यं पञ्चमं स्तोत्रम्

त्वत्पादपद्मसम्पर्कमात्रसम्भोगसङ्गिनम्।
गलेपादिकया नाथ मां स्ववेश्म प्रवेशय॥१॥

भवत्पादाम्बुजरजोराजिरञ्जितमूर्धजः।
अपाररभसारब्धनर्तनः स्यामहं कदा॥२॥

त्वदेकनाथो भगवन्नियदेवार्थये सदा।
त्वदन्तर्वसतिर्मूको भवेयं मान्यथा बुधः।।३।।

अहो सुधानिधे स्वामिन् अहो मृष्ट त्रिलोचन।
अहो स्वादो विरूपाक्षेत्येव नृत्येयमारटन्।।४।।

त्वपादपद्मसंस्पर्शपरिमीलितलोचनः।
विजृम्भेय भवद्भक्तिमदिरामदघूर्णितः।।५।।

चित्तभूभृद्भुवि विभो वसेयं क्वापि यत्र सा।
निरन्तरत्वत्प्रलापमयी वृत्तिर्महारसा।।६।।

यत्र देवीसमेतस्त्वमासौधादा च गोपुरात्।
बहुरूपः स्थितस्तस्मिन्वास्तव्यः स्यामहं पुरे।।७।।

समुल्लसन्तु भगवन् भवद्भानुमरीचयः।
विकसत्वेष यावन्मे हृत्पद्मः पूजनाय ते।।८।।

प्रसीद भगवन् येन त्वत्पदे पतितं सदा।
मनो मे तत्तदास्वाद्य क्षीवेदिव गलेदिव।।९।।

प्रहर्षाद्वाथ शोकाद्वा यदि कुड्याद्धटादपि।
बाह्यादथान्तराद्भावात्प्रकटीभव मे प्रभो।।१०।।

बहिरप्यन्तरपि तत्स्यन्दमानं सदास्तु मे।
भवत्पादाम्बुजस्पर्शामृतमत्यन्तशीतलम्।।११।।

त्वत्पादसंस्पर्शसुधासरसोऽन्तर्निमज्जनम्।
कोऽप्येष सर्वसम्भोगलङ्घी भोगोऽस्तु मे सदा।।१२।।

निवेदितमुपादत्स्व रागादि भगवन्मया।
आदाय चामृतीकृत्य भुङ्क्ष्व भक्तजनैःसमम्।।१३।।

अशेषभुवनाहारनित्यतृप्तः सुखासनम्।
स्वामिन् गृहाण दासेषु प्रसादालोकनक्षणम्।।१४।।

अन्तर्भक्तिचमत्कारचर्वणामीलितेक्षणः।
नमो मह्यं शिवायेति पूजयन् स्यां तृणान्यपि॥१५॥

अपि लब्धभवद्भावः स्वात्मोल्लासमयं जगत्।
पश्यन् भक्तिरसाभोगैर्भवेयमवियोजितः॥१६॥

आकाङ्क्षणीयमपरं येन नाथ न विद्यते।
तव तेनाद्वितीयस्य युक्तं यत्परिपूर्णता॥१७॥

हस्यते नृत्यते यत्र रागद्वेषादि भुज्यते।
पीयते भक्तिपीयूषरसस्तत्प्राप्नुयां पदम्॥१८॥

तत्तदपूर्वामोद-
त्वच्चिन्ताकुसुमवासना दृढताम्।
एतु मम मनसि याव-
न्नश्यतु दुर्वासनागन्धः॥१९॥

क्व नु रागादिषु रागः
क्व च हरचरणाम्बुजेषु रागित्वम्।
इत्थं विरोधरसिकं
बोधय हितममर मे हृदयम्॥२०॥

विचरन्योगदशास्वपि
विषयव्यावृत्तिवर्तमानोऽपि।
त्वच्चिन्तामदिरामद-
तरलीकृतहृदय एव स्याम्॥२१॥

वाचि मनोमतिषु तथा
शरीरचेष्टासु करणरचितासु।
सर्वत्र सर्वदा मे
पुरःसरो भवतु भक्तिरसः॥२२॥

शिव-शिव-शिवेति नामनि
तव निरवधि नाथ जप्यमानेऽस्मिन्।

आस्वादयन् भवेयं
कमपि महारसमपुनरुक्तम्॥२३॥

स्फुरदनन्तचिदात्मकविष्टपे
परिनिपीतसमस्तजडाध्वनि।
अगणितापरचिन्मयगण्डिके
प्रविचरेयमहं भवतोऽर्चिता॥२४॥

स्ववपुषि स्फुटभासिनि शाश्वते
स्थितिकृते न किमप्युपयुज्यते।
इति मतिः सुदृढा भवतात् परं
मम भवच्चरणाब्जरजः शुचेः॥२५॥

किमपि नाथ कदाचन चेतसि
स्फुरति तद्भवदंघ्रितलस्पृशाम्।
गलति यत्र समस्तमिदं सुधा-
सरसि विश्वमिदं दिश मे सदा॥२६॥

अथ अध्वविस्फुरणाख्यं षष्ठं स्तोत्रम्

क्षणमात्रमपीशान वियुक्तस्य त्वया मम।
निबिडं तप्यमानस्य सदा भूया दृशः पदम्।।१।।

वियोगसारे संसारे प्रियेण प्रभुणा त्वया।
अवियुक्तः सदैव स्यां जगतापि वियोजितः।।२।।

कायवाङ्मनसैर्यत्र यामि सर्वं त्वमेव तत्।
इत्येष परमार्थोऽपि परिपूर्णोऽस्तु मे सदा।।३।।

निर्विकल्पो महानन्दपूर्णो यद्बद्धवांस्तथा।
भवत्स्तुतिकरी भूयादनुरूपैव वाङ्मम।।४।।

भवदावेशतः पश्यन् भावं भावं भवन्मयम्।
विचरेयं निराकाङ्क्षः प्रहर्षपरिपूरितः।।५।।

भगवन्भवतः पूर्णं पश्येयमखिलं जगत्।
तावतैवास्मि सन्तुष्टस्ततो न परिखिद्यसे।।६।।

विलीयमानास्त्वय्येव व्योम्नि मेघलवा इव।
भावा विभान्तु मे शश्वत्क्रमनैर्मल्यगामिनः।।७।।

स्वप्रभाप्रसरध्वस्तापर्यन्तध्वान्तसन्ततिः।
सन्ततं भातु मे कोऽपि भवमध्याद्भवन्मणिः।।८।।

कां भूमिकां नाधिशेषे किं तत्स्याद्यन्न ते वपुः।
श्रान्तस्तेनाप्रयासेन सर्वतस्त्वामवाप्नुयाम्।।९।।

भवदङ्गपरिष्वङ्गसम्भोगः स्वेच्छयैव मे।
घटतामियति प्राप्ते किं नाथ न जितं मया।।१०।।

प्रकटीभव नान्याभिः प्रार्थनाभिः कदर्थनाः।
कुर्मस्ते नाथ ताम्यन्तस्त्वामेव मृगयामहे।।११।।

अथ विधुरविजयनामधेयं सप्तमं स्तोत्रम्

त्वय्यानन्दसरस्वति
समरसतामेत्य नाथ मम चेतः।
परिहरतु सकृदियन्तं
भेदाधीनं महानर्थम्॥१॥

एतन्मम न त्विदमिति
रागद्वेषादिनिगडदृढमूले।
नाथ भवन्मयतैक्य-
प्रत्ययपरशुः पतत्वन्तः॥२॥

गलतु विकल्पकलङ्कावली
समुल्लसतु हृदि निरर्गलता।
भगवन्नानन्दरस-
प्लुतास्तु मे चिन्मयी मूर्तिः॥३॥

रागादिमयभवाण्डक-
लुठितं त्वद्भक्तिभावनाम्बिका तैस्तैः।
आप्याययतु रसैर्मां
प्रवृद्धपक्षो यथा भवामि खगः।।४।।

त्वच्चरणभावनामृत-
रससारास्वादनैपुणं लभताम्।
चित्तमिदं निःशेषित-
विषयविषासङ्गवासनावधि मे।।५।।

त्वद्भक्तितपनदीधिति-
संस्पर्शवशान्ममैष दूरतरम्।
चेतोमणिर्विमुञ्चतु
रागादिक-तप्तवह्निकणान्।।६।।

तस्मिन्पदे भवन्तं
सततमुपश्लोकयेयमत्युच्चैः।
हरिहर्यश्वविरिञ्चा
अपि यत्र बहिः प्रतीक्षन्ते।।७।।

भक्तिमदजनितविभ्रम-
वशेन पश्येयमविकलं करणैः।
शिवमयमखिलं लोकं
क्रियाश्च पूजामयी सकलाः।।८।।

मामकमनोगृहीत-
त्वद्भक्तिकुलाङ्गनाणिमादिसुतान्।
सूत्वा सुबद्धमूला
ममेति बुद्धिं दृढीकुरुताम्।।९।।

अलौकिकोद्बलनाख्यमष्टमं स्तोत्रम्

यः प्रसादलव ईश्वरस्थितो
या च भक्तिरिव मामुपेयुषी।
तौ परस्परसमन्वितौ कदा
तादृशे वपुषि रूढिमेष्यतः॥१॥

त्वत्प्रभुत्वपरिचर्वणजन्मा
कोऽप्युदेतु परितोषरसोऽन्तः।
सर्वकालमिह मे परमस्तु
ज्ञानयोगमहिमादि विदूरे॥२॥

लोकवद्भवतु मे विषयेषु
स्फीत एव भगवन्परितर्षः।
केवलं तव शरीरतयैतान्
लोकयेयमहमस्तविकल्पः॥३॥

देहभूमिषु तथा मनसि त्वं
प्राणवर्त्मनि च भेदमुपेते।
संविदः पथिषु तेषु च तेन
स्वात्मना मम भव स्फुटरूपः।।४।।

निजनिजेषु पदेषु पतन्त्विमाः
करणवृत्तय उल्लसिता मम।
क्षणमपीश मनागपि मैव भूत्
त्वदविभेदरसक्षतिसाहसम्।।५।।

लघुमसृणसिताच्छशीतलं
भवदावेशवशेन भावयन्।
वपुरखिलपदार्थपद्धते-
र्व्यवहारानतिवर्तयेय तान्।।६।।

विकसतु स्ववपुर्भवदात्मकं
समुपयान्तु जगन्ति ममाङ्गताम्।

व्रजतु सर्वमिदं द्वयवल्गितं
स्मृतिपथोपगमेऽप्यनुपाख्यताम्।।७।।

समुदियादपि तादृशतावका-
ननविलोकपरामृतसम्प्लवः।
मम घटेत यथा भवदद्वया-
प्रथनघोरदरीपरिपूरणम्।।८।।

अपि कदाचन तावकसङ्गमा-
मृतकणाच्छुरणेन तनीयसा।
सकललोकसुखेषु पराङ्मुखो
न भवितास्म्युभयच्युत एव किम्।।९।।

सततमेव भवच्चरणाम्बुजा-
करचरस्य हि हंसवरस्य मे।
उपरि मूलतलादपि चान्तरा-
दुपनमत्वज भक्तिमृणालिका।।१०।।

उपयान्तु विभो समस्तवस्तून्यपि
चिन्ताविषयं दृशः पदं च।
मम दर्शनचिन्तनप्रकाशा-
मृतसाराणि परं परिस्फुरन्तु॥११॥

परमेश्वर तेषु तेषु कृच्छ्रे-
ष्वपि नामोपनमत्स्वहं भवेयम्।
न परं गतभीस्त्वदङ्गसङ्गा-
दुपजाताधिकसम्मदोऽपि यावत्॥१२॥

भवदात्मनि विश्वमुम्भितं यद्
भवतैवापि बहिः प्रकाश्यते तत्।
इति यद्दृढनिश्चयोपजुष्टं
तदिदानीं स्फुटमेव भासताम्॥१३॥

अथ स्वातन्त्र्यविजयाख्यं नवमं स्तोत्रम्

कदा नवरसार्द्रार्द्र-
सम्भोगास्वादनोत्सुकम्।
प्रवर्तेत विहायान्यत्
मम त्वत्स्पर्शने मनः॥१॥

त्वदेकरक्तस्त्वत्पाद-
पूजामात्रमहाधनः।
कदा साक्षात्करिष्यामि
भवन्तमयमुत्सुकः॥२॥

गाढानुरागवशतो
निरपेक्षीभूतमानसोऽस्मि कदा।
पटपटिति विघटिताखिल-
महार्गलस्त्वामुपैष्यामि॥३॥

स्वसंवित्सारहृदया-
धिष्ठानाः सर्वदेवताः।
कदा नाथ वशीकुर्यां
भवद्भक्तिप्रभावतः।।४।।

कदा मे स्याद्विभो भूरि
भक्त्यानन्दरसोत्सवः।
यदालोकसुखानन्दी
पृथङ्नामापि लप्स्यते।।५।।

ईश्वरमभयमुदारं
पूर्णमकारणमपहृतात्मानम्।
सहसाभिज्ञाय कदा
स्वामिजनं लज्जयिष्यामि।।६।।

कदा कामपि तां नाथ
तव वल्लभतामियाम्।

यया मां प्रति न क्वापि
युक्तं ते स्यात्पलायितुम्।।७।।

तत्त्वतोऽशेषजन्तूनां
भवत्पूजामयात्मनाम्।
दृष्ट्यानुमोदितरसा-
प्लावितः स्यां कदा विभो।।८।।

ज्ञानस्य परमा भूमि-
र्योगस्य परमा दशा।
त्वद्भक्तिर्या विभो कर्हि
पूर्णा मे स्यात्तदर्थिता।।९।।

सहसैवासाद्य कदा
गाढमवष्टभ्य हर्षविवशोऽहम्।
त्वच्चरणवरनिधानं
सर्वस्य प्रकटयिष्यामि।।१०।।

परितः प्रसरच्छुद्ध-
त्वदालोकमयः कदा।
स्यां यथेश न किञ्चिन्मे
मायाच्छायाबिलं भवेत्॥११॥

आत्मसात्कृतनिःशेष-
मण्डलो निर्व्यपेक्षकः।
कदा भवेयं भगवं-
स्त्वद्भक्तगणनायकः॥१२॥

नाथ लोकाभिमानाना-
मपूर्वं त्वं निबन्धनम्।
महाभिमानः कर्हि स्यां
त्वद्भक्तिरसपूरितः॥१३॥

अशेषविषयाशून्य-
श्रीसमाश्लेषसुस्थितः।

शयीयमिव शीताङ्घ्रि-
कुशेशययुगे कदा।।१४।।

भक्त्यासवसमृद्धाया-
स्त्वत्पूजाभोगसम्पदः।
कदा पारं गमिष्यामि
भविष्यामि कदा कृती।।१५।।

आनन्दबाष्पपूर-
स्खलितपरिभ्रान्तगद्गदाक्रन्दः।
हासोल्लासितवदन-
स्त्वत्स्पर्शरसं कदाप्स्यामि।।१६।।

पशुजनसमानवृत्ता-
मवधूय दशामिमां कदा शम्भो।
आस्वादयेय तावक-
भक्तोचितमात्मनो रूपम्।।१७।।

लब्धाणिमादिसिद्धि-
र्विगलितसकलोपतापसन्त्रासः।
त्वद्भक्तिरसायनपान-
क्रीडानिष्ठः कदासीय॥१८॥

नाथ कदा स तथाविध
आक्रन्दो मे समुच्चरेद् वाचि।
यत्समनन्तरमेव
स्फुरति पुरस्तावकी मूर्तिः॥१९॥

गाढगाढभवदङ्घ्रिसरोजा-
लिङ्गनव्यसनतत्परचेताः।
वस्त्ववस्त्विदमयत्नत एव
त्वां कदा समवलोकयितास्मि॥२०॥

अथ अविच्छेदभङ्गाख्यं दशमं स्तोत्रम्

न सोढव्यमवश्यं ते जगदेकप्रभोरिदम्।
माहेश्वराश्च लोकानामितरेषां समाश्च यत्॥१॥

ये सदैवानुरागेण भवत्पादानुगामिनः।
यत्र तत्र गता भोगांस्ते कांश्चिदुपभुञ्जते॥२॥

भर्ता कालान्तको यत्र भवांस्तत्र कुतो रुजः।
तत्र चेतरभोगाशा का लक्ष्मीर्यत्र तावकी॥३॥

क्षणमात्रसुखेनापि विभुर्येनासि लभ्यसे।
तदैव सर्वः कालोऽस्य त्वदानन्देन पूर्यते॥४॥

आनन्दरसबिन्दुस्ते चन्द्रमा गलितो भुवि।
सूर्यस्तथा ते प्रसृतः संहारी तेजसः कणः॥५॥

बलिं यामस्तृतीयाय नेत्रायास्मै तव प्रभो।
अलौकिकस्य कस्यापि माहात्म्यस्यैकलक्ष्मणे।।६।।

तेनैव दृष्टोऽसि भवद्दर्शनाद्योऽतिहृष्यति।
कथञ्चिद्यस्य वा हर्षः कोऽपि तेन त्वमीक्षितः।।७।।

येषां प्रसन्नोऽसि विभो यैर्लब्धं हृदयं तव।
आकृष्य त्वत्पुरात्तैस्तु बाह्यमाभ्यन्तरीकृतम्।।८।।

त्वदृते निखिलं विश्वं समदृग्यातमीक्ष्यताम्।
ईश्वरः पुनरेतस्य त्वमेको विषमेक्षणः।।९।।

आस्तां भवत्प्रभावेण विना सत्तैव नास्ति यत्।
त्वद्दूषणकथा येषां त्वदृते नोपपद्यते।।१०।।

बाह्यान्तरान्तरायालीकेवले चेतसि स्थितिः।
त्वयि चेत्स्यान्मम विभो किमन्यदुपयुज्यते।।११।।

अन्ये भ्रमन्ति भगवन्नात्मन्येवातिदुःस्थिताः।
अन्ये भ्रमन्ति भगवन्नात्मन्येवातिसुस्थिताः॥१२॥

अपीत्वापि भवद्भक्तिसुधामनवलोक्य च।
त्वामीश त्वत्समाचारमात्रात्सिद्ध्यन्ति जन्तवः॥१३॥

भृत्या वयं तव विभो तेन त्रिजगतां यथा।
बिभर्ष्यात्मानमेवं ते भर्त्तव्या वयमप्यलम्॥१४॥

परानन्दामृतमये दृष्टेऽपि जगदात्मनि।
त्वयि स्पर्शरसेऽत्यन्ततरमुत्कण्ठितोऽस्मि ते॥१५॥

देव दुःखान्यशेषाणि यानि संसारिणामपि।
धृत्याख्यभवदीयात्मयुतान्यायान्ति सह्यताम्॥१६॥

सर्वज्ञे सर्वशक्तौ च त्वय्येव सति चिन्मये।
सर्वथाप्यसतो नाथ युक्तास्य जगतः प्रथा॥१७॥

त्वत्प्राणिताः स्फुरन्तीमे गुणा लोष्टोपमा अपि।
नृत्यन्ति पवनोद्धूताः कार्पासपिचवो यथा।।१८।।

यदि नाथ गुणेष्वात्माभिमानो न भवेत्ततः।
केन हीयेत जगतस्त्वदेकात्मतया प्रथा।।१९।।

वन्द्यास्तेऽपि महीयांसः प्रलयोपगता अपि।
त्वत्कोपपावकस्पर्शपूता ये परमेश्वर।।२०।।

महाप्रकाशवपुषि विस्पष्टे भवति स्थिते।
सर्वतोऽपीश तत्कस्मात्तमसि प्रसराम्यहम्।।२१।।

अविभागो भवानेव स्वरूपममृतं मम।
तथापि मर्त्यधर्माणामहमेवैकमास्पदम्।।२२।।

महेश्वरेति यस्यास्ति नामकं वाग्विभूषणम्।
प्रणामाङ्कश्च शिरसि स एवैकः प्रभावितः।।२३।।

सदसच्च भवानेव येन तेनाप्रयासतः।
स्वरसेनैव भगवंस्तथा सिद्धिः कथं न मे॥२४॥

शिवदासः शिवैकात्मा किं यन्नासादयेत्सुखम्।
तर्प्योऽस्मि देवमुख्यानामपि येनामृतासवैः॥२५॥

हृन्नाभ्योरन्तरालस्थः प्राणिनां पित्तविग्रहः।
ग्रससे त्वं महावह्निः सर्वं स्थावरजङ्गमम्॥२६॥

अथ औत्सुक्यविश्वसितनामैकादशं स्तोत्रम्

जगदिदमथ वा सुहृदो
बन्धुजनो वा न भवति मम किमपि।
त्वं पुनरेतत्सर्वं
यदा तदा कोऽपरो मेऽस्तु॥१॥

स्वामिन्महेश्वरस्त्वं साक्षात्सर्वं जगत्त्वमेवेति।
वस्त्वेव सिद्धिमेत्विति याञ्चा तत्रापि याञ्चैव॥२॥

त्रिभुवनाधिपतित्वमपीह य-
त्तृणमिव प्रतिभाति भवज्जुषः।
किमिव तस्य फलं शुभकर्मणो
भवति नाथ भवत्स्मरणादृते॥३॥

येन नैव भवतोऽस्ति विभिन्नं
किञ्चनापि, जगतां प्रभवश्च।
त्वद्विजृम्भितमतोऽद्भुतकर्म-
स्वप्युदेति न तव स्तुतिबन्धः॥४॥

त्वन्मयोऽस्मि भवदर्चननिष्ठः
सर्वदाहमिति चाप्यविरामम्।
भावयन्नपि विभो स्वरसेन
स्वप्नगोऽपि न तथा किमिव स्याम्॥५॥

ये मनागपि भवच्चरणाब्जो-
द्भूतसौरभलवेन विमृष्टाः।
तेषु विस्त्रमिव भाति समस्तं
भोगजातममरैरपि मृग्यम्॥६॥

हृदि ते न तु विद्यतेऽन्यदन्य-
द्वचने कर्मणि चान्यदेव शंभो।
परमार्थसतोऽप्यनुग्रहो वा
यदि वा निग्रह एक एव कार्यः॥७॥

मूढोऽस्मि दुःखकलितोऽस्मि जरादिदोष-
भीतोऽस्मि शक्तिरहितोऽस्मि तवाश्रितोऽस्मि।
शम्भो तथा कलय शीघ्रमुपैमि येन
सर्वोत्तमां धुरमपोज्झितदुःखमार्गः॥८॥

त्वत्कर्णदेशमधिशय्य महार्घभाव-
माक्रन्दितानि मम तुच्छतराणि यान्ति।

वंशान्तरालपतितानि जलैकदेश-
खण्डानि मौक्तिकमणित्वमिवोद्वहन्ति।।९।।

किमिव च लभ्यते बत न तैरपि नाथ जनैः
क्षणमपि कैतवादपि च ये तव नाम्नि रताः।
शिशिरमयूखशेखर तथा कुरु येन मम
क्षतमरणोऽणिमादिकमुपैमि यथा विभवम्।।१०।।

शम्भो शर्व शशाङ्कशेखर शिव त्र्यक्षाक्षमालाधर
श्रीमन्नुग्रकपाललाञ्छन लसद्धीमत्रिशूलायुध।
कारुण्याम्बुनिधे त्रिलोकरचनाशीलोग्रशक्त्यात्मक
श्रीकण्ठाशु विनाशयाशुभभरानाधत्स्व सिद्धिं पराम्।।११

तत्किं नाथ भवेन्न यत्र भगवान्निर्मातृतामश्नुते
भावः स्यात्किमु तस्य चेतनवतो नाशास्ति यं शङ्करः।
इत्थं ते परमेश्वराक्षतमहाशक्तेः सदा संश्रितः
संसारेऽत्र निरन्तराधिविधुरः क्लिश्याम्यहं केवलम्।।१२

यद्यप्यत्र वरप्रदोद्धततमाः पीडाजरामृत्यवः
एते वा क्षणमासतां बहुमतः शब्दादिरेवास्थिरः।
तत्रापि स्पृहयामि सन्ततसुखाकाङ्क्षी चिरं स्थास्नवे
भोगास्वादयुतत्वदङ्घ्रिकमलध्यानप्रयजीवातवे॥१३॥

हे नाथ प्रणतार्तिनाशनपटो श्रेयोनिधे धूर्जटे
दुःखैकायतनस्य जन्ममरणत्रस्तस्य मे साम्प्रतम्।
तच्चेष्टस्व यथा मनोज्ञविषयास्वादप्रदा उत्तमाः
जीवन्नेव समश्नुवेऽहमचलाः सिद्धीस्त्वदर्चापरः॥१४॥

नमो मोहमहाध्वान्त-
ध्वंसनानन्यकर्मणे।
सर्वप्रकाशातिशय-
प्रकाशायेन्दुलक्ष्मणे॥१५॥

अथ रहस्यनिर्देशनाम द्वादशं स्तोत्रम्

सहकारि न किञ्चिदिष्यते
भवतो न प्रतिबन्धकं दृशि।
भवतैव हि सर्वमाप्लुतं
कथमद्यापि तथापि नेक्षसे॥१॥

अपि भावगणादपीन्द्रिय-
प्रचयादप्यवबोधमध्यतः।
प्रभवन्तमपि स्वतः सदा
परिपश्येयमपोढविश्वकम्॥२॥

कथं ते जायेरन्कथमपि च ते दर्शनपथं
व्रजेयुः केनापि प्रकृतिमहताङ्केन खचिताः।
तथोत्थायोत्थाय स्थलजलतृणादेरखिलतः
पदार्थाद्यान्सृष्टिस्त्रवदमृतपूरैर्विकिरसि॥३॥

साक्षात्कृतभवद्रूपप्रसृतामृततर्पिताः।
उन्मूलिततृषो मत्ता विचरन्ति यथारुचि।।४।।

न तदा न सदा न चैकदे-
त्यपि सा यत्र न कालधीर्भवेत्।
तदिदं भवदीयदर्शनं
न च नित्यं न च कथ्यतेऽन्यथा।।५।।

त्वद्विलोकनसमुत्कचेतसो
योगसिद्धिरियती सदास्तु मे।
यद्विशेयमभिसन्धिमात्रत-
स्त्वत्सुधासदनमर्चनाय ते।।६।।

निर्विकल्पभवदीयदर्शन-
प्राप्तिफुल्लमनसां महात्मनाम्।
उल्लसन्ति विमलानि हेलया
चेष्टितानि च वचांसि च स्फुटम्।।७।।

भगवन्भवदीयपादयो-
र्निवसन्नन्तर एव निर्भयः।
भवभूमिषु तासु तास्वहं
प्रभुमर्चेयमनर्गलक्रियः॥८॥

भवदङ्घ्रिसरोरुहोदरे
परिलीनो गलितापरैषणः।
अतिमात्रमधूपयोगतः
परितृप्तो विचरेयमिच्छया॥९॥

यस्य दम्भादिव भवत्पूजासङ्कल्प उत्थितः।
तस्याप्यवश्यमुदितं सन्निधानं तवोचितम्॥१०॥

भगवन्नितरानपेक्षिणा
नितरामेकरसेन चेतसा।
सुलभं सकलोपशायिनं
प्रभुमातृप्ति पिबेयमस्मि किम्॥११॥

त्वया निराकृतं सर्वं हेयमेतत्तदेव तु।
त्वन्मयं समुपादेयमित्ययं सारसंग्रहः॥१२॥

भवतोऽन्तरचारि-भावजातं
प्रभुवन्मुख्यतयैव पूजितं तत्।
भवतो बहिरप्यभावमात्रा
कथमीशान भवेत्समर्च्यते वा॥१३॥

निःशब्दं निर्विकल्पं च निर्व्याक्षेपमथानिशम्।
क्षोभेऽप्यध्यक्षमीक्षेयं त्र्यक्ष त्वामेव सर्वतः॥१४॥

प्रकटय निजधाम देव यस्मिं-
स्त्वमसि सदा परमेश्वरीसमेतः।
प्रभुचरणरजःसमानकक्ष्याः
किमविश्वासपदं भवन्ति भृत्याः॥१५॥

दर्शनपथमुपयातोऽप्यपसरसि
कुतो ममेश भृत्यस्य।

क्षणमात्रकमिह न भवसि
कस्य न जन्तोर्दृशोर्विषयः॥१६॥

ऐक्यसंविदमृताच्छधारया
सन्ततप्रसृतया सदा विभो।
प्लावनात् परमभेदमानयं-
स्त्वां निजं च वपुराप्नुयां मुदम्॥१७॥

अहमित्यमुतोऽवरुद्धलोका-
द्भवदीयात्प्रतिपत्तिसारतो मे।
अणुमात्रकमेव विश्वनिष्ठं
घटतां येन भवेयमर्चिता ते॥१८॥

अपरिमितरूपमहं
तं तं भावं प्रतिक्षणं पश्यन्।
त्वामेव विश्वरूपं
निजनाथं साधु पश्येयम्॥१९॥

भवदङ्गगतं तमेव कस्मा-
न्न मनः पर्यटतीष्टमर्थमर्थम्।
प्रकृतिक्षतिरस्ति नो तथास्य
मम चेच्छा परिपूर्यते परैव॥२०॥

शतशः किल ते तवानुभावा-
द्भगवन्केऽप्यमुनैव चक्षुषा ये।
अपि हालिकचेष्टया चरन्तः
परिपश्यन्ति भवद्वपुः सदाग्रे॥२१॥

न सा मतिरुदेति या न भवति त्वदिच्छामयी
सदा शुभमथैतरद्भगवतैवमाचर्यते।
अतोऽस्मि भवदात्मको भुवि यथा तथा सञ्चरन्
स्थितोऽनिशमबाधितत्वदमलाङ्घ्रिपूजोत्सवः॥२२॥

भवदीयगभीरभाषितेषु
प्रतिभा सम्यगुदेतु मे पुरोऽतः।

तदनुष्ठितशक्तिरप्यतस्त-
द्भवदर्चाव्यसनं च निर्विरामम्॥२३॥

व्यवहारपदेऽपि सर्वदा
प्रतिभात्वर्थकलाप एष माम्।
भवतोऽवयवो यथा न तु
स्वत एवादरणीयतां गतः॥२४॥

मनसि स्वरसेन यत्र तत्र
प्रचरत्यप्यहमस्य गोचरेषु।
प्रसृतोऽप्यविलोल एव युष्म-
त्परिचर्याचतुरः सदा भवेयम्॥२५॥

भगवन्भवदिच्छयैव दास-
स्तव जातोऽस्मि परस्य नात्र शक्तिः।
कथमेष तथापि वक्त्रबिम्बं
तव पश्यामि न जातु चित्रमेतत्॥२६॥

समुत्सुकास्त्वां प्रति ये भवन्तं
प्रत्यर्थरूपादवलोकयन्ति।
तेषामहो किं तदुपस्थितं स्यात्
किं साधनं वा फलितं भवेत्तत्॥२७॥

भावा भावतया सन्तु
भवद्भावेन मे भव।
तथा न किञ्चिदप्यस्तु
न किञ्चिद्भवतोऽन्यथा॥२८॥

Existing or non-existing, I will find you everywhere and I shall worship you everywhere.
Utpaldeva Acharya

यत्र किञ्चिदपि तत्र किञ्चिद-
प्यस्तु किञ्चिदपि किञ्चिदेव मे।
सर्वथा भवतु तावता भवान्
सर्वतो भवति लब्धपूजितः॥२९॥

Title named by the Acharya

अथ संग्रहस्तोत्रनाम त्रयोदशं स्तोत्रम्

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं
मां प्रति स्थितमिदं शृणु प्रभो।
सौख्यमेष भवता समागमः
स्वामिना विरह एव दुःखिता॥१॥

अन्तरप्यतितरामणीयसी
या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।
तामपीश परिमृज्य सर्वतः
स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय॥२॥

तावके वपुषि विश्वनिर्भरे
चित्सुधारसमये निरत्यये।
तिष्ठतः सततमर्चतः प्रभुं
जीवितं मृतमथान्यदस्तु मे॥३॥

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान्
पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मि कोऽपरः।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते
मानिता त्वदनुरागिणः परम्॥४॥

देवदेव भवदद्वयामृता-
ख्यातिसंहरणलब्धजन्मना।
तद्यथास्थितपदार्थसंविदा
मां कुरुष्व चरणार्चनोचितम्॥५॥

ध्यायते तदनु दृश्यते ततः
स्पृश्यते च परमेश्वरः स्वयम्।
यत्र पूजनमहोत्सवः स मे
सर्वदास्तु भवतोऽनुभावतः॥६॥

यद्यथास्थितपदार्थदर्शनं
युष्मदर्चनमहोत्सवश्च यः।

युग्ममेतदितरेतराश्रयं
भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते।।७।।

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं
युष्मदर्चनरसायनासवम्।
सर्वभावचषकेषु पूरिते-
ष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः।।८।।

अन्यवेद्यमणुमात्रमस्ति न
स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते।
यत्र नाथ भवतः पुरे स्थितिं
तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः।।९।।

दासधाम्नि विनियोजितोऽप्यहं
स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः
पादसंवहनकर्मणापि वा।।१०।।

शक्तिपातसमये विचारणं
प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः
स्वप्रकाशनविधौ विलम्बसे॥११॥

तत्र तत्र विषये बहिर्विभा-
त्यन्तरे च परमेश्वरीयुतम्।
त्वां जगत्त्रितयनिर्भरं सदा
लोकयेय निजपाणिपूजितम्॥१२॥

स्वामिसौधमभिसन्धिमात्रतो
निर्विबन्धमधिरुह्य सर्वदा।
स्यां प्रसादपरमामृतासवा-
पानकेलिपरिलब्धनिर्वृतिः॥१३॥

यत्समस्तसुभगार्थवस्तुषु
स्पर्शमात्रविधिना चमत्कृतिम्।

तां समर्पयति, तेन ते वपुः
पूजयन्त्यचलभक्तिशालिनः॥१४॥

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन्
विश्वमामृशसि रूपमामृशन्।
यत्स्वयं निजरसेन घूर्णसे
तत्समुल्लसति भावमण्डलम्॥१५॥

योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं
पश्यतीश निखिलं भवद्वपुः।
स्वात्मपक्षपरिपूरिते जग-
त्यस्य नित्यसुखिनः कुतो भयम्॥१६॥

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ते
कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपु-
र्भेदवृत्ति यदि रोचते न मे॥१७॥

त्वत्प्रलापमयरक्तगीतिका-
नित्ययुक्तवदनोपशोभितः।
स्यामथापि भवदर्चनक्रिया-
प्रेयसीपरिगताशयः सदा।।१८।।

ईहितं न बत पारमेश्वरं
शक्यते गणयितुं तथा च मे।
दत्तमप्यमृतनिर्भरं वपुः
स्वं न पातुमनुमन्यते तथा।।१९।।

त्वामगाधमविकल्पमद्वयं
स्वं स्वरूपमखिलार्थघस्मरम्।
आविशन्नहमुमेश सर्वदा
पूजयेयमभिसंस्तुवीय च।।२०।।

अथ जयस्तोत्रनाम चतुर्दशं स्तोत्रम्

ॐ जयलक्ष्मीनिधानस्य निजस्य स्वामिनः पुरः।
जयोद्घोषणपीयूषरसमास्वादये क्षणम्॥१॥

जयैकरुद्रैकशिव महादेव महेश्वर।
पार्वतीप्रणयिञ्शर्व सर्वगीर्वाणपूर्वज॥२॥

जय त्रैलोक्यनाथैकलाञ्छनालिकलोचन।
जय पीतार्तलोकार्तिकालकूटाङ्ककन्धर॥३॥

जय मूर्तत्रिशक्त्यात्मशितशूलोल्लसत्कर।
जयेच्छामात्रसिद्धार्थपूजार्हचरणाम्बुज॥४॥

जय शोभाशतस्यन्दिलोकोत्तरवपुर्धर।
जयैकजटिकाक्षीणगङ्गाकृत्यात्तभस्मक॥५॥

जय क्षीरोदपर्यस्तज्योत्स्नाच्छायानुलेपन।
जयेश्वराङ्गसङ्गोत्थरत्नकान्ताहिमण्डन।।६।।

जयाक्षयैकशीतांशुकलासदृशसंश्रय।
जय गङ्गासदारब्धविश्वैश्वर्याभिषेचन।।७।।

जयाधराङ्गसंस्पर्शपावनीकृतगोकुल।
जय भक्तिमदाबद्धगोष्ठीनियतसन्निधे।।८।।

जय स्वेच्छातपोवेशविप्रलम्भितबालिश।
जय गौरीपरिष्वङ्गयोग्यसौभाग्यभाजन।।९।।

जय भक्तिरसार्द्रार्द्रभावोपायनलम्पट।
जय भक्तिमदोद्दामभक्तवाङ्नृत्ततोषित।।१०।।

जय ब्रह्मादिदेवेशप्रभावप्रभवव्यय।
जयलोकेश्वरश्रेणीशिरोविधृतशासन।।११।।

जय सर्वजगन्न्यस्तस्वमुद्राव्यक्तवैभव।
जयात्मदानपर्यन्तविश्वेश्वर महेश्वर।।१२।।

जय त्रैलोक्यसर्गेच्छावसरासद्द्वितीयक।
जयैश्वर्यभरोद्वाहदेवीमात्रसहायक।।१३।।

जयाक्रमसमाक्रान्तसमस्तभुवनत्रय।
जयाविगीतमाबालगीयमानेश्वरध्वने।।१४।।

जयानुकम्पादिगुणानपेक्षसहजोन्नते।
जय भीष्ममहामृत्युघटनापूर्वभैरव।।१५।।

जय विश्वक्षयोच्चण्डक्रियानिष्परिपन्थिक।
जय श्रेयःशतगुणानुगनामानुकीर्तन।।१६।।

जय हेलावितीर्णैतदमृताकरसागर।
जय विश्वक्षयाक्षेपिक्षणकोपाशुशुक्षणे।।१७।।

जय मोहान्धकारान्धजीवलोकैकदीपक।
जय प्रसुप्तजगतीजागरूकाधिपूरुष।।१८।।

जय देहाद्रिकुञ्जान्तर्निकूजज्जीवजीवक।
जय सन्मानसव्योमविलासिवरसारस।।१९।।

जय जाम्बूनदोदग्रधातूद्भवगिरीश्वर।
जय पापिषु निन्दोल्कापातनोत्पातचन्द्रमः।।२०।।

जय कष्टतपःक्लिष्टमुनिदेवदुरासद।
जय सर्वदशारूढभक्तिमल्लोकलोकित।।२१।।

जय स्वसम्पत्प्रसरपात्रीकृतनिजाश्रित।
जय प्रपन्नजनतालालनैकप्रयोजन।।२२।।

जय सर्गस्थितिध्वंसकारणैकावदानक।
जय भक्तिमदालोललीलोत्पलमहोत्सव।।२३।।

जय जय भाजन जय जितजन्म-
जरामरण जय जगज्ज्येष्ठ।
जय जय जय जय जय जय जय
जय जय जय जय जय जय त्रयक्ष।।२४।।

अथ भक्तिस्तोत्रनाम पञ्चदशं स्तोत्रम्

त्रिमलक्षालिनो ग्रन्थाः सन्ति तत्पारगास्तथा।
योगिनः पण्डिताः स्वस्थास्त्वद्भक्ता एव तत्त्वतः।।१।।

मायीयकालनियतिरागाद्याहारतर्पिताः।
चरन्ति सुखिनो नाथ भक्तिमन्तो जगत्तटे।।२।।

रुदन्तो वा हसन्तो वा त्वामुच्चैः प्रलपन्त्यमी।
भक्ताः स्तुतिपदोच्चारोपचाराः पृथगेव ते।।३।।

न विरक्तो न चापीशो मोक्षाकाङ्क्षी त्वदर्चकः।
भवेयमपि तूद्रिक्तभक्त्यासवरसोन्मदः।।४।।

बाह्यं हृदय एवान्तरभिहृत्यैव योऽर्चति।
त्वामीश भक्तिपीयूषरसपूरैर्नमामि तम्।।५।।

धर्माधर्मात्मनोरन्तः क्रिययोर्ज्ञानयोस्तथा।
सुखदुःखात्मनोर्भक्ताः किमप्यास्वादयन्त्यहो।।६।।

चराचरपितः स्वामिन् अप्यन्धा अपि कुष्ठिनः।
शोभन्ते परमुद्दामभवद्भक्तिविभूषणाः।।७।।

शिलोञ्छपिच्छकशिपुविच्छायाङ्गा अपि प्रभो।
भवद्भक्तिमहोष्माणो राजराजमपीशते।।८।।

सुधार्द्रायां भवद्भक्तौ लुठताप्यारुरुक्षुणा।
चेतसैव विभोऽर्चन्ति केचित्त्वामभितः स्थिताः।।९।।

रक्षणीयं वर्धनीयं बहुमान्यमिदं प्रभो।
संसारदुर्गतिहरं भवद्भक्तिमहाधनम्।।१०।।

नाथ ते भक्तजनता यद्यपि त्वयि रागिणी।
तथापीर्ष्यां विहायास्यास्तुष्टास्तु स्वामिनी सदा।।११।।

भवद्भावः पुरो भावी प्राप्ते त्वद्भक्तिसम्भवे।
लब्धे दुग्धमहाकुम्भे हता दधनि गृध्नुता।।१२।।

किमियं न सिद्धिरतुला
किं वा मुख्यं न सौख्यमास्रवति।
भक्तिरुपचीयमाना
येयं शम्भोः सदातनी भवति।।१३।।

मनसि मलिने मदीये
मग्ना त्वद्भक्तिमणिलता कष्टम्।
न निजानपि तनुते तान्
अपौरुषेयान्स्वसम्पदुल्लासान्।।१४।।

भक्तिर्भगवति भवति
त्रिलोकनाथे ननूत्तमा सिद्धिः।
किन्त्वणिमादिकविरहात्
सैव न पूर्णेति चिन्ता मे।।१५।।

बाह्यतोऽन्तरपि चोत्कटोन्मिष-
त्त्र्यम्बकस्तवकसौरभाः शुभाः।
वासयन्त्यपि विरुद्धवासनान्
योगिनो निकटवासिनोऽखिलान्।।१६।।

ज्योतिरस्ति कथयापि न किंचि-
द्विश्वमप्यतिसुषुप्तमशेषम्

यत्र नाथ शिवरात्रिपदेऽस्मिन्
नित्यमर्चयति भक्तजनस्त्वाम्।।१७।।

सत्त्वं सत्यगुणे शिवे भगवति स्फारीभवत्वर्चने
चूडायां विलसन्तु शङ्करपदप्रोद्यद्रजःसञ्चयाः।
रागादिस्मृतिवासनामपि समुच्छेत्तुं तमो जृम्भतां
शम्भो मे भवतात्त्वदात्मविलये त्रैगुण्यवर्गोऽथवा।।१८।।

संसाराध्वा सुदूरः खरतरविविधव्याधिदग्धाङ्गयष्टिः
भोगा नैवोपभुक्ता यदपि सुखमभूज्जातु तन्नो चिराय।
इत्थं व्यर्थोऽस्मि जातः शशिधरचरणाक्रान्तिकान्तोत्तमाङ्ग-
स्त्वद्भक्तश्चेति तन्मे कुरु सपदि महासम्पदो दीर्घदीर्घाः।।१९।।

अथ पाशानुद्भेदनाम षोडशं स्तोत्रम्

न किञ्चिदेव लोकानां भवदावरणं प्रति।
न किञ्चिदेव भक्तानां भवदावरणं प्रति।।१।।

अप्युपायक्रमप्राप्यः सङ्कुलोऽपि विशेषणैः।
भक्तिभाजां भवानात्मा सकृच्छुद्धोऽवभासते।।२।।

जयन्तोऽपि हसन्त्येते जिता अपि हसन्ति च।
भवद्भक्तिसुधापानमत्ताः केऽप्येव ये प्रभो।।३।।

शुष्ककं मैव सिद्धेय मैव मुच्येय वापि तु।
स्वादिष्टपरकाष्ठाप्तत्वद्भक्तिरसनिर्भरः।।४।।

यथैवाज्ञातपूर्वोऽयं भवद्भक्तिरसो मम।
घटितस्तद्वदीशान स एव परिपुष्यतु।।५।।

सत्येन भगवन्नान्यः प्रार्थनाप्रसरोऽस्ति मे।
केवलं स तथा कोऽपि भक्त्यावेशोऽस्तु मे सदा।।६।।

भक्तिक्षीवोऽपि कुप्येयं भवायानुशयीय च।
तथा हसेयं रुद्यां च रटेयं च शिवेत्यलम्।।७।।

विषमस्थोऽपि स्वस्थोऽपि रुदन्नपि हसन्नपि।
गम्भीरोऽपि विचित्तोऽपि भवेयं भक्तितः प्रभो।।८।।

भक्तानां नास्ति संवेद्यं त्वदन्तर्यदि वा बहिः।
चिद्धर्मा यत्र न भवान्निर्विकल्पः स्थितः स्वयम्।।९।।

भक्ता निन्दानुकारेऽपि तवामृतकणैरिव।
हृष्यन्त्येवान्तराविद्धास्तीक्ष्णरोमाङ्कसूचिभिः।।१०।।

दुःखापि वेदना भक्तिमतां भोगाय कल्पते।
येषां सुधार्द्रा सर्वैव संवित्त्वच्चन्द्रिकामयी।।११।।

यत्र तत्रोपरुद्धानां भक्तानां बहिरन्तरे।
निर्व्याजं त्वद्वपुःस्पर्शरसास्वादसुखं समम्॥१२॥

तवेश भक्तेरर्चायां दैन्यांशं द्वयसंश्रयम्।
विलुप्यास्वादयन्त्येके वपुरच्छं सुधामयम्॥१३॥

भ्रान्तास्तीर्थदृशो भिन्ना भ्रान्तेरेव हि भिन्नता।
निष्प्रतिद्वन्द्वि वस्त्वेकं भक्तानां त्वं तु राजसे॥१४॥

मानावमानरागादिनिष्पाकविमलं मनः।
यस्यासौ भक्तिमांल्लोकतुल्यशीलः कथं भवेत्॥१५॥

रागद्वेषान्धकारोऽपि येषां भक्तित्विषा जितः।
तेषां महीयसामग्रे कतमे ज्ञानशालिनः॥१६॥

यस्य भक्तिसुधास्नानपानादिविधिसाधनम्।
तस्य प्रारब्धमध्यान्तदशासूच्चैः सुखासिका॥१७॥

कीर्त्यश्चिन्तापदं मृग्यः पूज्यो येन त्वमेव तत्।
भवद्भक्तिमतां श्लाघ्या लोकयात्रा भवन्मयी।।१८।।

मुक्तिसंज्ञा विपक्काया भक्तेरेव त्वयि प्रभो।
तस्यामाद्यदशारूढा मुक्तकल्पा वयं ततः।।१९।।

दुःखागमोऽपि भूयान्मे त्वद्भक्तिभरितात्मनः।
त्वत्पराची विभो मा भूदपि सौख्यपरम्परा।।२०।।

त्वं भक्त्या प्रीयसे भक्तिः प्रीते त्वयि च नाथ यत्।
तदन्योन्याश्रयं युक्तं यथा वेत्थ त्वमेव तत्।।२१।।

साकारो वा निराकारो वान्तर्वा बहिरेव वा।
भक्तिमत्तात्मनां नाथ सर्वथासि सुधामयः।।२२।।

अस्मिन्नेव जगत्यन्तर्भवद्भक्तिमतः प्रति।
हर्षप्रकाशनफलमन्यदेव जगत्स्थितम्।।२३।।

गुह्ये भक्तिः परे भक्तिर्भक्तिर्विश्वमहेश्वरे।
त्वयि शम्भौ शिवे देव भक्तिर्नाम किमप्यहो।।२४।।

भक्तिर्भक्तिः परे भक्तिर्भक्तिर्नाम समुत्कटा।
तारं विरौमि यत्तीव्रा भक्तिर्मेऽस्तु परं त्वयि।।२५।।

यतोऽसि सर्वशोभानां प्रसवावनिरीश तत्।
त्वयि लग्नमनर्घं स्याद्रत्नं वा यदि वा तृणम्।।२६।।

आवेदकादा च वेद्याद्येषां संवेदनाध्वनि।
भवता न वियोगोऽस्ति ते जयन्ति भवज्जुषः।।२७।।

संसारसदसो बाह्ये कैश्चित्त्वं परिरभ्यसे।
स्वामिन्परैस्तु तत्रैव ताम्यद्भिस्त्यक्तयन्त्रणैः।।२८।।

पानाशनप्रसाधन-
सम्भुक्तसमस्तविश्वया शिवया।

प्रलयोत्सवसरभसया
दृढमुपगूढं शिवं वन्दे॥२९॥

परमेश्वरता जयत्यपूर्वा
तव विश्वेश यदीशितव्यशून्या।
अपरापि तथैव ते ययेदं
जगदाभाति यथा तथा न भाति॥३०॥

अथ दिव्यक्रीडाबहुमाननाम सप्तदशं स्तोत्रम्

अहो कोऽपि जयत्येष स्वादुः पूजामहोत्सवः।
यतोऽमृतरसास्वादमश्नूण्यपि ददत्यलम्॥१॥

व्यापाराः सिद्धिदाः सर्वे ये त्वत्पूजापुरःसराः।
भक्तानां त्वन्मयाः सर्वे स्वयं सिद्धय एव ते।।२।।

सर्वदा सर्वभावेषु युगपत्सर्वरूपिणम्।
त्वामर्चयन्त्यविश्रान्तं ये ममैतेऽधिदेवताः।।३।।

ध्यानायासतिरस्कारसिद्धस्त्वत्स्पर्शनोत्सवः।
पूजाविधिरिति ख्यातो भक्तानां स सदास्तु मे।।४।।

भक्तानां समतासारविषुवत्समयः सदा।
त्वद्भावरसपीयूषरसेन्नैषां सदार्चनम्।।५।।

यस्यानारम्भपर्यन्तौ न च कालक्रमः प्रभो।
पूजात्मासौ क्रिया तस्याः कर्तारस्त्वज्जुषः परम्।।६।।

ब्रह्मादीनामपीशास्ते ते च सौभाग्यभागिनः।
येषां स्वप्नेऽपि मोहेऽपि स्थितस्त्वत्पूजनोत्सवः।।७।।

जपतां जुह्वतां स्नातां ध्यायतां न च केवलम्।
भक्तानां भवदभ्यर्चामहो यावद्यदा तदा॥८॥

भवत्पूजासुधास्वादसम्भोगसुखिनः सदा।
इन्द्रादीनामथ ब्रह्ममुख्यानामस्ति कः समः॥९॥

जगत्क्षोभैकजनके भवत्पूजामहोत्सवे।
यत्प्राप्यं प्राप्यते किंचिद्भक्ता एव विदन्ति तत्॥१०॥

त्वद्धाम्नि चिन्मये स्थित्वा षट्त्रिंशत्तत्त्वकर्मभिः।
कायवाक्चित्तचेष्टाद्यैरर्चये त्वां सदा विभो॥११॥

भवत्पूजामयासङ्गसम्भोगसुखिनो मम।
प्रयातु कालः सकलोऽप्यनन्तोऽपीयदर्थये॥१२॥

भवत्पूजामृतरसाभोगलम्पटता विभो।
विवर्धतामनुदिनं सदा च फलतां मम॥१३॥

जगद्विलयसञ्जातसुधैकरसनिर्भरे।
त्वदब्धौ त्वां महात्मानमर्चन्नासीय सर्वदा।।१४।।

अशेषवासनाग्रन्थिविच्छेदसरलं सदा।
मनो निवेद्यते भक्तैः स्वादु पूजाविधौ तव।।१५।।

अधिष्ठायैव विषयानिमाः करणवृत्तयः।
भक्तानां प्रेषयन्ति त्वत्पूजार्थममृतासवम्।।१६।।

भक्तानां भक्तिसंवेगमहोष्मविवशात्मनाम्।
कोऽन्यो निर्वाणहेतुः स्यात्त्वत्पूजामृतमज्जनात्।।१७।।

सततं त्वत्पदाभ्यर्चासुधापानमहोत्सवः।
त्वत्प्रसादैकसम्प्राप्तिहेतुर्मे नाथ कल्पताम्।।१८।।

अनुभूयासमीशान प्रतिकर्म क्षणात्क्षणम्।
भवत्पूजामृतापानमदास्वादमहामुदम्।।१९।।

दृष्टार्थ एव भक्तानां भवत्पूजामहोद्यमः।
तदैव यदसम्भाव्यं सुखमास्वादयन्ति ते॥२०॥

यावन्न लब्धस्त्वत्पूजासुधास्वादमहोत्सवः।
तावन्नास्वादितो मन्ये लवोऽपि सुखसम्पदः॥२१॥

भक्तानां विषयान्वेषाभासायासाद्विनैव सा।
अयत्नसिद्धं त्वद्धामस्थितिः पूजासु जायते॥२२॥

न प्राप्यमस्ति भक्तानां नाप्येषामस्ति दुर्लभम्।
केवलं विचरन्त्येते भवत्पूजामदोन्मदाः॥२३॥

अहो भक्तिभरोदारचेतसां वरद त्वयि।
श्लाघ्यः पूजाविधिः कोऽपि यो न याञ्चाकलंकितः॥२४॥

का न शोभा न को ह्लादः का समृद्धिर्न वापरा।
को वा न मोक्षः कोऽप्येष महादेवो यदर्च्यते॥२५॥

अन्तरुल्लसदच्छाच्छभक्तिपीयूषपोषितम्।
भवत्पूजोपयोगाय शरीरमिदमस्तु मे॥२६॥

त्वत्पादपूजासम्भोगपरतन्त्रः सदा विभो।
भूयासं जगतामीश एकः स्वच्छन्दचेष्टितः॥२७॥

त्वद्ध्यानदर्शनस्पर्शतृषि केषामपि प्रभो।
जायते शीतलस्वादु भवत्पूजामहासरः॥२८॥

यथा त्वमेव जगतः पूजासम्भोगभाजनम्।
तथेश भक्तिमानेव पूजासम्भोगभाजनम्॥२९॥

कोऽप्यसौ जयति स्वामिन्भवत्पूजामहोत्सवः।
षट्त्रिंशतोऽपि तत्त्वानां क्षोभो यत्रोल्लसत्यलम्॥३०॥

नमस्तेभ्यो विभो येषां भक्तिपीयूषवारिणा।
पूज्यान्येव भवन्ति त्वत्पूजोपकरणान्यपि॥३१॥

पूजारम्भे विभो ध्यात्वा मन्त्राधेयां त्वदात्मताम्।
स्वात्मन्येव परे भक्ता मान्ति हर्षेण न क्वचित्॥३२॥

राज्यलाभादिवोत्फुल्लैः कैश्चित्पूजामहोत्सवे।
सुधासवेन सकला जगती संविभज्यते॥३३॥

पूजामृतापानमयो येषां भोगः प्रतिक्षणम्।
किं देवा उत मुक्तास्ते किं वा केऽप्येव ते जनाः॥३४॥

पूजोपकरणीभूतविश्वावेशेन गौरवम्।
अहो किमपि भक्तानां किमप्येव च लाघवम्॥३५॥

पूजामयाक्षविक्षेपक्षोभादेवामृतोद्गमः।
भक्तानां क्षीरजलधिक्षोभादिव दिवौकसाम्॥३६

पूजां केचन मन्यन्ते धेनुं कामदुघामिव।
सुधाधाराधिकरसां धयन्त्यन्तर्मुखाः परे॥३७॥

भक्तानामक्षविक्षेपोऽप्येष संसारसंमतः।
उपनीय किमप्यन्तः पुष्णात्यर्चामहोत्सवम्।।३८

भक्तिक्षोभवशादीश स्वात्मभूतेऽर्चनं त्वयि।
चित्रं दैन्याय नोयावद्दीनतायाः परं फलम्।।३९।।

उपचारपदं पूजा केषांचित्त्वत्पदाप्तये।
भक्तानां भवदैकात्म्यनिर्वृत्तिप्रसरस्तु सः।।४०।।

अप्यसम्बद्धरूपार्चा भक्तचुन्मादनिरर्गलैः।
वितन्यमाना लभते प्रतिष्ठां त्वयि कामपि।।४१।।

स्वादुभक्तिरसास्वादस्तब्धीभूतमनश्च्युताम्।
शम्भो त्वमेव ललितः पूजानां किल भाजनम्।।४२।।

परिपूर्णानि शुद्धानि भक्तिमन्ति स्थिराणि च।
भवत्पूजाविधौ नाथ साधनानि भवन्तु मे।।४३।।

अशेषपूजासत्कोशे त्वत्पूजाकर्मणि प्रभो।
अहो करणवृन्दस्य कापि लक्ष्मीर्विजृम्भते।।४४।।

एषा पेशलिमा नाथ तवैव किल दृश्यते।
विश्वेश्वरोऽपि भृत्यैर्यदर्च्यसे यश्च लभ्यसे।।४५।।

सदा मूर्त्तादमूर्त्ताद्वा भावाद्यद्वाप्यभावतः।
उत्थेयान्मे प्रशस्तस्य भवत्पूजामहोत्सवः।।४६।।

कामक्रोधाभिमानैस्त्वामुपहारीकृतैः सदा।
येऽर्चयन्ति नमस्तेभ्यस्तेषां तुष्टोऽसि तत्त्वतः।।४७

जयत्येष भवद्भक्तिभाजां पूजाविधिः परः।
यस्तृणैः क्रियमाणोऽपि रत्नैरेवोपकल्पते।।४८।।

अथ आविष्कारनाम अष्टादशं स्तोत्रं

जगतोऽन्तरतो भवन्तमाप्त्वा
पुनरेतद्भवतोऽन्तराल्लभन्ते।
जगदीश तवैव भक्तिभाजो
न हि तेषामिह दूरतोऽस्ति किञ्चित्॥१॥

क्वचिदेव भवान् क्वचिद्भवानी
सकलार्थक्रमगर्भिणी प्रधाना।
परमार्थपदे तु नैव देव्या
भवतो नापि जगत्त्रयस्य भेदः॥२॥

नो जानते सुभगमप्यवलेपवन्तो
लोकाः प्रयत्नसुभगा निखिला हि भावाः।
चेतः पुनर्यदिदमुद्यतमप्यवैति
नैवात्मरूपमिह हा तदहो हतोऽस्मि॥३॥

भवन्मयस्वात्मनिवासलब्ध-
सम्यद्धराभ्यर्चितयुष्मदङ्घ्रिः।
न भोजनाच्छादनमप्यजस्त्र-
मपेक्षते यस्तमहं नतोऽस्मि।।४।।

सदा भवद्देहनिवासस्वस्थो-
ऽप्यन्तः परं दह्यत एष लोकः।
तवेच्छया तत्कुरु मे यथात्र
त्वदर्चनानन्दमयो भवेयम्।।५।।

स्वरसोदितयुष्मदङ्घ्रिपद्म-
द्वयपूजामृतपानसक्तचित्तः।
सकलार्थचयेष्वहं भवेयम्
सुखसंस्पर्शनमात्रलोकयात्रः।।६।।

सकलव्यवहारगोचरे
स्फुटमन्तः स्फुरति त्वयि प्रभो।

उपयान्त्यपान्ति चानिशम्।
मम वस्तूनि विभान्तु सर्वदा।।७।।

सततमेव तवैव पुरेऽथवा-
प्यरहितो विचरेयमहं त्वया।
क्षणलवोऽप्यथमा स्म भवेत् स मे
न विजये ननु यत्र भवन्मयः।।८।।

भवदङ्गपरिस्रवत्सुशीता-
मृतपूरैर्भरिते समन्ततोऽपि।
भवदर्चनसम्पदेह भक्ता-
स्तव संसारसरोऽन्तरे चरन्ति।।९।।

महामन्त्रतरुच्छायाशीतले त्वन्महावने।
निजात्मनि सदा नाथ वसेयं तव पूजकः।।१०।।

प्रतिवस्तु समस्तजीवतः
प्रतिभासि प्रतिभामयो यथा।
मम नाथ तथा पुरः प्रथां
व्रज नेत्रत्रयशूलशोभितः॥११॥

अभिमानचरूपहारतो
ममताभक्तिभरेण कल्पितात्।
परितोषगतः कदा भवान्
मम सर्वत्र भवेद् दृशः पदम्॥१२॥

निवसन्परमामृताब्धिमध्ये
भवदर्चाविधिमात्रमग्नचित्तः।
सकलं जनवृत्तमाचरेयं
रसयन्सर्वत एव किञ्चनापि॥१३॥

भवदीयमिहास्तु वस्तु तत्त्वं
विवरीतुं क इवात्र पात्रमर्थे।

इदमेव हि नामरूपचेष्टा-
द्यसमं ते हरते हरोऽस्मि यस्मात्।।१४।।

शान्तये न सुखलिप्सुता मनाक्
भक्तिसम्भृतमदेषु तैः प्रभोः।
मोक्षमार्गणफलापि नार्थना
स्मर्यते हृदयहारिणः पुरः।।१५।।

जागरेतरदशाथवा परा
यापि काचन मनागवस्थितेः।
भक्तिभाजनजनस्य साखिला
त्वत्सनाथमनसो महोत्सवः।।१६।।

आमनोऽक्षवलयस्य वृत्तयः
सर्वतः शिथिलवृत्तयोऽपि ताः।
त्वामवाप्य दृढदीर्घसंविदो
नाथ भक्तिधनसोष्मणां कथम्।।१७।।

न च विभिन्नमसृज्यत किञ्चिद-
स्त्यथ सुखेतरदत्र न निर्मितम्।
अथ च दुःखि च भेदि च सर्वथा-
प्यसमविस्मयधाम नमोऽस्तु ते॥१८॥

खरनिषेधखदामृतपूरणो-
च्छलितधौतविकल्पमलस्य मे।
दलितदुर्जयसंशयवैरिण-
स्त्वदवलोकनमस्तु निरन्तरम्॥१९॥

स्फुटमाविश मामथाविशेयं
सततं नाथ भवन्तमस्मि यस्मात्।
रभसेन वपुस्तवैव साक्षा-
त्परमासक्तिगतः समर्चयेयम्॥२०॥

त्वयि न स्तुतिशक्तिरस्ति कस्या-
प्यथवास्त्येव यतोऽतिसुन्दरोऽसि।

सततं पुनरर्थितं ममैत-
द्यदविश्रान्ति विलोकयेयमीशम्।।२१।।

अथ उद्योतनाभिधानाम्
एकोनविंशं स्तोत्रम्

प्रार्थनाभूमिकातीतविचित्रफलदायकः।
जयत्यपूर्ववृत्तान्तः शिवः सत्कल्पपादपः।।१।।

सर्ववस्तुनिचयैकनिधाना-
त्स्वात्मनस्त्वदखिलं किल लभ्यम्।
अस्य मे पुनरसौ निज आत्मा
न त्वमेव घटसे परमास्ताम्।।२।।

ज्ञानकर्ममयचिद्वपुरात्मा
सर्वथैष परमेश्वर एव।
स्याद्वपुस्तु निखिलेषु पदार्थे-
ष्वेषु नाम न भवेत्किमुतान्यत्।।३।।

विषमार्तिमुषानेन फलेन त्वदृगात्मना।
अभिलीय पथा नाथ ममास्तु त्वन्मयी गतिः।।४।

भवदमलचरणचिन्तारत्नलता-
लङ्कृता कदा सिद्धिः।
सिद्धजनमानसानां विस्मयजननी
घटेत मम भवतः।।५।।

कर्हि नाथ विमलं मुखबिम्बं
तावकं समवलोकयितास्मि।
यत्स्त्रवत्यमृतपूरमपूर्वं
यो निमज्जयति विश्वमशेषम्।।६।।

ध्यातमात्रमुदितं तव रूपं
कर्हि नाथ परमामृतपूरैः।
पूरयेत्त्वदविभेदविमोक्षा-
ख्यातिदूरविवराणि सदा मे।।७।।

त्वदीयानुत्तररसासङ्गसन्त्यक्तचापलम्।
नाद्यापि मे मनो नाथ कर्हि स्यादस्तु शीघ्रतः।।८।।

मा शुष्ककटुकान्येव परं सर्वाणि सर्वदा।
तवोपहृत्य लब्धानि द्वन्द्वान्यप्यापतन्तु मे।।९।।

नाथ साम्मुख्यमायान्तु विशुद्धास्तव रश्मयः।
यावत्कायमनस्तापतमोभिः परिलुप्यताम्।।१०।।

देव प्रसीद यावन्मे त्वन्मार्गपरिपन्थिकाः।
परमार्थमुषो वश्या भूयासुर्गुणतस्कराः।।११।।

त्वद्भक्तिसुधासारैर्मानसमापूर्यतां ममाशु विभो।
यावदिमा उह्यन्तां निःशेषासारवासनाः प्लुत्वा॥१२॥

मोक्षदशायां भक्ति-
स्त्वयि कुत इव मर्त्यधर्मिणोऽपि न सा।
राजति ततोऽनुरूपा-
मारोपय सिद्धिभूमिकामज माम्॥१३॥

सिद्धिलवलाभलुब्धं
मामवलेपेन मा विभो संस्थाः।
क्षामस्त्वद्भक्तिमुखे
प्रोल्लसदणिमादिपक्षतो मोक्षः॥१४॥

दासस्य मे प्रसीदतु
भगवानेतावदेव ननु याचे।
दाता त्रिभुवननाथो
यस्य न तन्मादृशां दृशो विषयः॥१५॥

त्वद्वपुःस्मृतिसुधारसपूर्णे
मानसे तव पदाम्बुजयुग्मम्।
मामके विकसदस्तु सदैव
प्रस्त्रवन्मधु किमप्यतिलोकम्॥१६॥

अस्ति मे प्रभुरसौ जनकोऽथ
त्र्यम्बकोऽथ जननी च भवानी।
न द्वितीय इह कोऽपि ममास्ती-
त्येव निर्वृततमो विचरेयम्॥१७॥

अथ चर्वणभिधानं विशं स्तोत्रम्

नाथं त्रिभुवननाथं भूतिसितं त्रिनयनं त्रिशूलधरम्।
उपवीतीकृतभोगिनमिन्दुकलाशेखरं वन्दे॥१॥

नौमि निजतनुविनिस्सरदंशुकपरिवेषधवलपरिधानम्।
विलसत्कपालमालाकल्पितनृत्तोत्सवाकल्पम्॥२॥

वन्दे तान् दैवतं येषां हरश्रेष्ठा हरोचिताः।
हरैकप्रवणाः प्राणाः सदा सौभाग्यसद्मनाम्॥३॥

क्रीडितं तव महेश्वरतायाः पृष्ठतोऽन्यदिदमेव यथैतत्।
इष्टमात्रघटितेष्ववदानेष्वात्मना परमुपायमुपैमि॥४॥

त्वद्धाम्नि विश्ववन्द्येऽस्मिन्नियति क्रीडने सति।
तव नाथ कियान् भूयान्नानन्दरससम्भवः॥५॥

कथं स सुभगो मा भूद्यो गौर्या वल्लभो हरः।
हरोऽपि मा भूदथ किं गौर्याः परमवल्लभः॥६॥

ध्यानामृतमयं यस्य स्वात्ममूलमनश्वरम्।
संविल्लतास्तथारूपास्तस्य कस्यापि सत्तरोः॥७॥

भक्तिकण्डूसमुल्लासावसरे परमेश्वर।
महानिकषपाषाणस्थूणा पूजैव जायते॥८॥

सदा सृष्टिविनोदाय सदा स्थितिसुखासिने।
सदा त्रिभुवनाहारतृप्ताय स्वामिने नमः॥९॥

न क्वापि गत्वा हित्वापि न किंचिदिदमेव ये।
भव्यं त्वद्धाम पश्यन्ति भव्यास्तेभ्यो नमो नमः॥१०॥

भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यदुपयाचितम्।
एतया वा दरिद्राणां किमन्यदुपयाचितम्॥११॥

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः॥१२॥

मूले मध्येऽवसाने च नास्ति दुःखं भवज्जुषाम्।
तथापि वयमीशान सीदामः कथमुच्यताम्॥१३॥

ज्ञानयोगादिनान्येषामप्यपेक्षितुमर्हति।
प्रकाशः स्वैरिणामेव भवान् भक्तिमतां प्रभो॥१४॥

भक्तानां नार्तयो नाप्यस्त्याध्यानं स्वात्मनस्तव।
तथाप्यस्ति शिवेत्येतत्किमप्येषां बहिर्मुखे॥१५॥

सर्वाभासावभासो यो विमर्शवलितोऽखिलम्।
अहमेतदिति स्तौमि तां क्रियाशक्तिमीश ते॥१६॥

वर्तन्ते जन्तवोऽशेषा अपि ब्रह्मेन्द्रविष्णवः।
ग्रसमानास्ततो वन्दे देव विश्वं भवन्मयम्॥१७॥

सतो विनाशसम्बन्धान्मत्परं निखिलं मृषा।
एवमेवोद्यते नाथ त्वया संहारलीलया॥१८॥

ध्यातमात्रमुपतिष्ठत एव
त्वद्वपुर्वरद भक्तिधनानाम्।
अप्यचिन्त्यमखिलाद्भुतचिन्ता-
कर्तृतां प्रति च ते विजयन्ते॥१९॥

तावकभक्तिरसासव-
सेकादिव सुखितमर्ममण्डलस्फुरितैः।
नृत्यति वीरजनो निशि
वेतालकुलैः कृतोत्साहः॥२०॥

आरब्धा भवदभिनुति-
रमुना येनाङ्गकेन मम शम्भो।

तेनापर्यन्तमिमं कालं
दृढमखिलमेव भविषीष्ट॥२१॥

इति श्रीमदुत्पलदेवाचार्य विरचिता
"शिवस्तोत्रावली" समाप्त